आप पढ़िए और औरों को पढ़ाइए!

आत्मभाव के जानने वालों का पूर्व समान संसारीभाव नहीं होता, परन्तु जिसका पूर्व समान व्यवहार है वह ब्रह्मात्मभाव का ज्ञाता नहीं है।

ब्र. सूत्र १,१, ४ भाष्यकार।

ज्ञानी व्यवहार-निर्णय

लेखक

स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

हरिद्वार

प्रथम वार] कुम्भ प्रयाग १९५४ मूल्य =)

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः ।
अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुखः ।४४३।

प्राचीनवासनावेगादसौ संसरतीति चेत् ।
न सदेकत्वविज्ञानान्मंदी भवति वासना ।४४४।

अत्यंतकामुकस्यापि वृत्तिः कुंठति मातरि ।
तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानंदे मनीषिणः ।४४५।

ब्रह्मज्ञानी का पूर्व (अज्ञान वश) समान व्यवहार नहीं होता, यदि है तो वह ज्ञानी नहीं है, बहिर्मुख है ।।४४३।। यदि कहो कि वह प्राचीन वासना से ऐसा व्यवहार करता है, तो ठीक नहीं अद्वय सत्य के ज्ञान से वासना मंद हो जाती है ।।४४४।। यथा अत्यंत कामी की वृत्ति माता के विषय में कुण्ठित हो जाती है। वैसे ही पूर्णानन्द स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान से ज्ञानी की ।।४४५।।

ज्ञानी व्यवहार-निर्णय

अवतरणिका

शंकर अद्वैत सिद्धान्त में ज्ञानी व्यवहार सम्बन्धी इस समय दो मत पाये जाते हैं— (१) ज्ञानी अज्ञानी में केवल आत्मानात्म-अध्यास के भाव अभाव का भेद है। इन में व्यवहार-समानता है, अशास्त्रीय व्यवहार तथा रागयुक्त भोग में भी कोई आपत्ति नहीं। (२) ज्ञानोपरान्त शास्त्रीय व्यवहार अनिवार्य है। उपरति, वैराग्य, समाधि अभ्यास सहज होता है। आजकल व्यवहार में प्रथम पक्ष ही बलवान है। कहा भी है कि हे मैत्रेयि कलियुग में सब लोग ब्रह्म का कथन करेंगे, परन्तु काम और जिह्वारस में आसक्त होने से अनुष्ठान नहीं करेंगे। इसलिये साधकों तथा साधारण जनता की रक्षा तथा वेदान्त सिद्धान्त के उचित

मान के लिये ज्ञानी के व्यवहार के निर्णय की आवश्यकता है।

भ्रान्ति का मुख्य कारण—यह है कि उपनिषद् आदि में कई ऐसे वचन हैं कि (१) बिना पूर्वापर संगति तथा (२) उपदेष्टा के वास्तविक तात्पर्य के विचार के उनका आपाततः अर्थ प्रथम पक्ष के अनुसार हो सकता है। इस लिये हम संदिग्ध प्रकरण आदि के भाव के निर्णय करने में उपर्युक्त दो बातों का विशेष ध्यान रक्खेंगे। पञ्चदशी तथा विचार सागर का बहुत प्रचार है। वर्तमान भ्रान्ति में इन दो का विशेष भाग है।

(१) पञ्चदशी का उपर्युक्त हेतुओं के कारण तथ्य तात्पर्य नहीं समझा जाता, वह भाष्यकार आदि प्राचीन आचार्यों से किञ्चित् भी विरुद्ध नहीं।

(२) परन्तु विचार सागर के कई प्रकरण ११६–११९, ४७४–४७८ वेदान्त सिद्धान्त के विरुद्ध वर्तमान भ्रान्ति के घातक विष से भरे हैं। इस लिये इन दो के

सविस्तर उल्लेख के अतिरिक्त प्रस्थानत्रयी तथा भाष्यकार आदि के भी ज्ञानी व्यवहार सम्बन्धी संक्षिप्त मार्मिक वचनों को रक्खेंगे।

प्रथम पक्ष के समर्थक हेतु—(क) साधु असाधु कर्म का नित्य असंग आत्मा पर कुछ प्रभाव नहीं, ऐसे ही ज्ञानी भी निर्लेप है। (ख) ज्ञान संचित तथा क्रियमाण पुण्य-पाप का क्षय कर देता है, इस लिये अनुमान होता है कि ज्ञानी पाप भी कर देता है, (ग) ज्ञानी पर शास्त्र का अंकुश नहीं। (घ) इतिहास में ज्ञानियों के यथेष्टाचार तथा रागयुक्त भोग का वर्णन है।

समाधान

(क) साधु असाधु कर्म से आत्मा तथा ज्ञानी निर्लेप है।

(क १) वह अद्वय आत्मा न साधु कर्म से बढ़ता है न असाधु से घटता है। वेदानुवचन आदि चित्त शुद्धि द्वारा इसकी जिज्ञासा के हेतु हैं। आत्मा को जान कर ब्राह्मण मुनि होता है। त्रिविध एषणाओं का त्याग कर भिक्षाचर्या करता

है। इस 'नेति नेति' आत्मा के ज्ञानी को यह सन्ताप नहीं होता कि मैंने पाप अथवा पुण्य किया है। बृ. ४, ४, २२।

समाधान—इसका अभिप्राय यह नहीं कि ज्ञानी भी पाप करता है, प्रत्युत आत्मा की पूर्वोक्त नित्यता, असङ्गता की दृढ़ता अथवा व्याख्या रूप से ऐसा कहा गया है, अन्यथा यदि आत्मा वास्तव में कर्त्ता भोक्ता होता, तो ज्ञान द्वारा भी मोक्ष कदापि न होता और पाप आदि के मूल एषणा के त्याग से तथा वेदानुवचन द्वारा शुद्धचित्त होने से पाप अथवा रागयुक्त भोग बन ही नहीं सकता।

(क २) परन्तु पूर्व पक्षी कहता है कि छां. ८, १२. ३ में ज्ञानी के भोग का वर्णन है। यथा वह ज्ञानी खाता है, हंसता है, स्त्री, यान आदि से रमण करता है।

समाधान समाधान भाष्यकार—वह इन्द्र आदि के तादात्म्य से स्वर्ग के रस आदि को भोगता है, राग-द्वेष कषाय नाश होने से ज्ञान द्वारा

व्यक्त ब्रह्मलोक की सत्य कामनाओं को भोगता है। ऐसी कामनाओं का सर्वात्मभूत मुक्त पुरुष से जो सम्बन्ध का निर्देश है, यह आत्मज्ञान की स्तुति के लिए है, क्योंकि यह निर्गुण विद्या का प्रकरण है आनन्दगिरि सो यहां सर्वात्मभाव तथा ज्ञानस्तुति का वर्णन है।

(क ३) पू० पक्ष—गीता ६, ३१ में कहा है सर्व भूतों में स्थित मुझ को जो अभेद भाव से भजता है वह सर्व प्रकार से याज्ञवल्क्य समान कर्म-त्याग कर, जनक समान विहित कर्म कर, तथा दत्तात्रेय समान प्रतिषिद्ध कर्म कर—व्यवहार करने पर भी वह योगी मुझ में वर्तता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।

समाधान—मधुसूदन (अद्वैत सिद्धिकार) ब्रह्मवित्त में निषिद्ध कर्म के प्रवर्तक राग-द्वेष असम्भव होने से उस को अंगीकार करके ज्ञान की स्तुति के लिये यह कहा गया है।—यथा ज्ञानी इन लोकों का हनन करके भी न हनन करता है न बन्धन में पड़ता है। गीता १८-१७ आनन्द गिरि आदि का भी यही भाव है।

(क ४) ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य भूमिका—'पशुभिश्चाविशेषात्, व्यवहार में विवेकी की पशु से समानता है।

समाधान—भामती, न्यायनिर्णय, विद्याभरण तथा रत्नप्रभा में वाचस्पति आनन्दगिरि आदि द्वारा उपर्युक्त प्रकरण की व्याख्या:—आत्म विवेकी का भी व्यवहार अध्यास मूलक है, क्योंकि विवेक से अभिप्राय है—आगम तथा युक्ति द्वारा आत्मानत्म. का विवेक। सो यह देहात्म प्रत्यक्ष भ्रम का विरोधी नहीं; और आत्म साक्षात्कार ज्ञानी का व्यवहार भी बाधित अध्यास की अनुवृत्ति मात्र से होता है और परलोक गामी देह-भिन्न कर्त्ता भोक्ता आत्मा का बोध तो परमार्थ अव्यय आत्मा की दृष्टि से अध्यास ही है, इसलिये यहाँ अध्यास-जन्य व्यवहार मात्र की दृष्टि से विवेकी भी पशु अथवा अज्ञानी समान व्यवहार में कहा है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सम्पूर्णरूप से इनके व्यवहार

में समानता है अर्थात् यथेष्टाचरण तथा रागयुक्त भोग भी ज्ञानी में पाया जाता है। व्यवहार के कई अवान्तर भेद हैं (१) यथेष्टाचरण। (२) सकाम शास्त्रोक्त कर्म (३) चित्त शुद्धि के लिये निष्काम कर्म (४) जिज्ञासु के श्रवण आदि (५) ज्ञानी के लोकोपकारार्थ अधिकारी के अनुसार निष्काम कर्म अध्यापन आदि। सो ज्ञानी का पामर अथवा पशु समान कदापि व्यवहार नहीं होता, प्रत्युत २-४ कक्षा के आत्मसाक्षात्कार रहित अज्ञानी के भी समान नहीं होता। ५ कक्षा का सदैव होता है।

भाष्य कार ने स्वयं ब्रह्म सूत्र १, १, ४ के भाष्य में तथा विवेक चूड़ामणि में कहा है। ब्रह्मात्मा के साक्षात्कारवान् का पूर्व अज्ञान दशा समान व्यवहार नहीं होता। यदि ऐसा है तो वह ब्रह्मात्मभाव को नहीं जानता, बहिर्मुखी है। यदि कहो कि वह प्राचीन वासना के वेग से ऐसा व्यवहार करता है, यह ठीक नहीं। अद्वय सत्य के ज्ञान से वासना मंद हो जाती है। अत्यन्त कामी की वृत्ति भी माता के विषय में कुण्ठित

हो जाती है, ऐसे ही पूर्ण आनन्द स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान से विद्वान् की। विवेक चूड़ामणि, ४४३–४४५।

(क ५) पञ्चदशी के आधार पर ज्ञानी व्यवहार-विवेचन

आजकल ज्ञानी के व्यवहार के सम्बन्ध में जो भ्रान्ति पाई जाती है इसका मुख्य कारण पञ्चदशी प्रतीत होती है। पञ्चदशी अद्वैत वेदान्त का एक सर्वमान्य और प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें अद्वैत सिद्धान्त की प्रक्रिया तथा व्याख्या रोचक, हृदयंगम, ग्राह्य तथा सरल है। इसलिए जो प्रस्थानत्रयी के सूक्ष्म जटिल भाष्य आदि ग्रन्थों का श्रवण तथा मनन नहीं कर सकते, उनके लिए यह बड़ा उपादेय ग्रंथ है और साधारण जनता में इसका अधिक प्रचार है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु से इस ग्रंथ के आद्योपान्त अध्ययन से ऐसी इहलोक तथा परलोक में महती हानि-प्रद भ्रान्ति कभी नहीं हो सकती। इस भ्रान्ति का मूल तथा मुख्य कारण है (१) अन्तः-

करण मलिन होने से वेदान्त-श्रवण का अधिकार न होने पर इस ग्रंथ के अध्ययन का दुराग्रह, (२) बुद्धिमन्दता के कारण किन्हीं श्लोकों का बिना पूर्वापरसंगति विचारे अर्थनिर्धारण करना तथा सम्पूर्ण ग्रंथ के विभिन्न भागों के समन्वय का यत्न न करना, अथवा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के बिना ही साधारण अथवा निज परिश्रम से परमतत्त्व सम्बन्धी वेदान्त के अगाध समुद्र में प्रवेश करना इस से अध्यात्म मृत्यु का आह्वान तो करना ही है। अन्यथा पूर्वापरसंगति तथा किसी प्रकरण आदि के सर्वमान्य आचार्य विद्यारण्य मुनि के उद्देश्य को दृष्टि में रखने से, किसी श्लोक अथवा प्रकरण का तात्पर्य प्रस्थानत्रयी तथा प्राचीन आचार्यों के विरुद्ध कभी भी नहीं निकल सकता कि ज्ञानी यथेष्ट चेष्टा अथवा राग-युक्त भोग मार्ग का भी अवलम्बन कर सकता है। वर्तमान समय में सर्वसाधारण में पूर्वोक्त महान् हानि-

प्रद भ्रांति का मुख्य कारण इस सर्वमान्य ग्रंथ के तथ्य तात्पर्य को न समझना ही है। इसलिए प्रसंग के उचित विस्तृत उद्धरण देकर तथा तत्सापेक्ष अन्य प्रकरणों को उपस्थित करके सब सम्बन्धित प्रकरणों को सम्मुख रखते हुए इस विषय में आचार्य का तथ्य भाव प्रकट करने की चेष्टा करेंगे। आशा की जाती है कि सत्य के प्रेमी सज्जन धैर्य तथा निष्पक्ष भाव से तथ्य को ग्रहण करने का यत्न करेंगे—

ज्ञानी के व्यवहार के विषय में तीन प्रकरण विशेष उल्लेखनीय हैं (क) चित्रदीप प्रकरण २५६-२६० तत्त्वज्ञान फल (ख) तृप्तिदीप प्रकरण १३०-२५१, विशेषतया (१३१-१६०, २१६-२१२, २२३-२६, २४५-२५१) (ग) द्वैत विवेक प्रकरण ४३-६४ जिसमें जीव के (१) शास्त्रीय, (२) अशास्त्रीय, व्यवहार के विभाग तथा इन के हेय और उपादेय भाव का वर्णन है।

तत्त्वज्ञान का फल–(चित्रदीप प्रकरण २५६–२६०) इस प्रकरण के पूर्व भाग में तत्त्वज्ञान का शास्त्र तथा युक्ति के आधार पर निरूपण किया गया है कि अद्वैत आत्म तत्त्व ही परमार्थ सत्य है और अन्य सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् रूप द्वैत मिथ्या = अनिर्वचनीय है। अब इस तत्त्व-ज्ञान का फल निरूपण करते हैं।

तत्त्व-ज्ञान फल कठ (६, १५) के आधार पर, मुमुक्षु के हृदय में जो भी आत्मानात्म-अध्यास-मूलक कामनाएं स्थित हैं। जब वह सम्पूर्ण तत्त्व-ज्ञान द्वारा उपर्युक्त अध्यास के निवृत्त होने पर सर्वथा छूट जाती हैं उस समय (देहतादात्म्याध्यास के कारण) यह मरणधर्मा पुरुष इस अध्यास का अभाव होने से अमृत हो जाता है, क्योंकि वह इस देह में ही सत्य आदि लक्षण-युक्त ब्रह्म को सम्यक् रूप से प्राप्त होता है। इसका समर्थन केवल श्रुति द्वारा ही नहीं होता, प्रत्युत अनुभव भी

इसका अनुमोदन करता है (यथा कठ ६. १६) २ ६ "जब इस मुमुक्षु की सम्पूर्ण हृदय की ग्रंथियों—अहंकार और आत्मा का तादात्म्याध्यासरूप—का सर्वथा-निशेष-भेदन हो जाता है तो यह मरण-धर्मा पुरुष अमृत हो जाता है—मृत्यु को तर जाता है। यही परम्परा प्राप्त शिक्षा की पराकाष्ठा है"—ऐसे ६, १६ में बताया गया है कि (६, १५) उक्त कामनाओं का तात्पर्य हृदय-ग्रंथि = आत्मानात्माध्यास है। ६/२६०

(६, १५) उक्त काम तात्पर्य—अहंकार और चेतन आत्मा को अविवेक के कारण एक समझ कर—यह मुझे मिले-यह मुझे मिले ऐसी दृढ़ इच्छा का नाम ही काम है। उपर्युक्त अध्यास-मूलक आग्रह रहित सामान्य इच्छा का नाम काम नहीं। ६/२५-६१।

उपर्युक्त आत्मा तथा अहंकार का अध्यास न होने पर अनन्त वस्तुओं की सामान्य अदृढ़

इच्छा (मोक्ष अथवा साक्षी आत्मा का) बाध नहीं करती, क्योंकि ग्रंथी का भेद हो चुका है ६२. (प्र) यदि कहो कि अभ्यास के अभाव में कामनाओं का उदय कैसे होगा तो इसका उत्तर यह है कि ग्रंथि-भेद होने पर भी प्रारब्ध दोष से प्रारब्ध-जन्य सुख-दुःख सिद्धि के लिए सामान्य इच्छा असम्भव नहीं। ६३. यथा देह-गत व्याधि से अहंकार साक्षी का बाध नहीं होता क्योंकि आत्मा का देह से सम्बन्ध नहीं है ऐसे अहंकार गत इच्छा से आत्मा का बाध नहीं होता। ६४. (प्र.) यदि कहो कि चिदात्मा की असंगता ही एक रस होने से ग्रंथि-भेद से पूर्व भी तो आत्मा का कामादि से बाध नहीं था-(उ.) अहंकार-गत इच्छा के होने न होने से आत्मा में कुछ विकार नहीं आता ऐसा बोध ही ग्रंथि-भेद हम को भी इष्ट है। ६५.

(प्र) यदि कहो कि मूढ़ ऐसा नहीं जानते--(उ.) तो आत्मा की एकरस असंगता निर्विकारता के अज्ञान को ही ग्रंथी कहते हैं—'उपर्युक्त ग्रंथी (अध्यास) तथा इसके भेदन मात्र का ही मूढ़ अज्ञानी तथा ज्ञानी का (वैषम्य) भेद है।' ६६. अज्ञानी और ज्ञानी की देह इन्द्रियां, मन तथा बुद्धि की प्रवृत्ति और निवृत्ति (रूप व्यवहार) में यत्किञ्चित् भी विषमता भेद नहीं है। ६७. गीता १४, २२,२३ में भी यही ग्रंथि-भेद कथन किया गया है कि ज्ञानी न प्रवृत्त (व्यवहार करने वाले) गुणों (अथवा उनके द्वारा प्राप्त दुःख) से द्वेष करता है और न निवृत्त गुण-(तज्जन्य सुख की कांक्षा करता है, उदासीन समान व्यवहार करता है। ६८. (प्र) यदि कहो कि उपर्युक्त गीता वाक्य उदासीनता (अप्रवृत्ति) का विधान करता है (उ.) तो वत् =(समान) शब्द व्यर्थ हो जायगा (प्र.) यदि कहो कि ज्ञानी के देहादि कार्य की सामर्थ्य नहीं

रखते (उ.) तो तत्वबोध भी एक व्याधि (त्रय ७१) ही हुआ। २७०. (प्र.) पुराण आदि में भरत आदि की अप्रवृत्ति का वर्णन है। (उ.) तो छा. ८. १२, ३. में ऐसा भी कहा है 'कि ज्ञानी भक्षण करता हुआ, हंसता हुआ, स्वच्छन्द विहार करता हुआ, स्त्री आदि से रमण करता हुआ इस शरीर का स्मरण नहीं करता।' यह श्रुति इतिहास से बलवान् है। ७२. (तथ्य यह है) कि भरत आदि के भी आहार आदि विषयक संपूर्ण प्रवृत्ति को त्याग कर काष्टपाषाणवत् स्थित होने का कहीं कथन नहीं है, किन्तु संगभय के कारण उदासीन रहे—७३. संगभय का कारण बतलाते हैं—संगी लोक में बंधन में पड़ता है—और निःसंगी संग—लगाव-रहित मनुष्य—सुख भोगता है। इसलिए मोक्ष सुख की इच्छा वाले को संग सदा नितान्त त्याग देना चाहिए। ७४.

शास्त्र रहस्य (ज्ञानी का अंतःकरण संगरहित-

होता है, न कि प्रवृत्तिमात्र का अभाव होता है)। मूढ़ कुछ का कुछ कहते हैं (बाह्य प्रवृत्तिमात्र के भाव अभाव से अज्ञानी ज्ञानी का निर्णय करते हैं) हम शास्त्र सिद्धान्त का निरूपण करते हैं। ७५.

'वैराग्य, बोध तथा उपरति यह परस्पर मोक्ष में सहायक हैं-इसलिए प्रायः एक साथ पाए जाते हैं— यथा शुक आदि निवृत्तिवान् पुरुष में;। कहीं-कहीं (प्रतिबंधक प्रारब्ध कर्म के कारण शास्त्रीय वा लोक-व्यवहार में प्रवृत्त पुरुष में यथा—जनक आदि) यह एक दूसरे से पृथक् पाए जाते हैं। ७६.

७७–८०— वैराग्य, बोध, उपरति के हेतु स्वरूप और कार्य का निरूपण है।

तत्त्व बोध इन तीन में प्रधान है, क्योंकि यह साक्षात् मोक्ष का हेतु है—(श्वेताश्वतर २, ८)

वैराग्य और उपरति बोध के उपकारक हैं (मु० २, १, १२ बृ० ४, ४, २३)

यदि ये तीन ही अत्यन्त दृढ़, पुष्ट हों, तो यह पूर्व जन्मकृत महा पुण्यरूप तप का परिपाक है, अन्यथा प्रतिबन्धक पाप के अनुसार किसी देश अथवा पुरुष में (जनक सभा में याज्ञवल्क्य के समान) कुछ अंश में यथा स्वर्णालंकृत सहस्र गौ की कामना के समय कभी इनका प्रतिवन्ध (वियोग) होता है। ८२

वैराग्य तथा उपरति पूर्ण हो, और बोध प्रतिबद्ध हो तो मोक्ष नहीं होती, तप प्रभाव से पुण्यलोक की प्राप्ति होती है। ८३

बोधपूर्ण होने पर यदि वैराग्य उपरति का प्रतिबद्ध हो तो मोक्ष निश्चय होता है किन्तु, दृष्ट दुःख का नाश नहीं होता है। ८४

ब्रह्मलोक की भी तृण समान तुच्छ गणना—यह वैराग्य की पराकाष्ठा है, और देहात्मभाव समान परमात्मभाव की दृढ़ता बोध की पराकाष्ठा है। ८५

सुषुप्ति समान विस्मृति उपरति की सीमा है—

इनके अवान्तर तारतम्य की अवस्था का इनसे ही निश्चय होता है। ८६

प्रारब्ध कर्म में भेद के कारण ज्ञानियों के व्यवहार में भेद पाया जाता है। इस कारण पण्डितों को शास्त्र के तात्पर्य के विषय में भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए ८७। अपने २ कर्मानुसार वह भिन्न प्रकार से व्यवहार करें। सब में बोध की समानता है। इसलिये सब को समान मुक्ति रूप फल की प्राप्ति होती है—यह सिद्धान्त है, ८८।

रहस्य

इस सम्पूर्ण प्रकरण के सम्यक् अवलोडन से ज्ञानी में, दृढ़ कामना तथा तज्जन्य स्वच्छन्द भोग तथा यथेष्ट व्यवहार कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

१. ज्ञानी में कामना तथा चिंता का अभाव

यहां केवल प्रारब्ध सुख दुःख निर्वाहार्थ

सामान्य, अदृढ़, आभास मात्र इच्छा का समर्थन है, जो किसी प्रारब्ध के उदय होने पर तत्काल उदय हो जाती है और प्रारब्ध भोग समाप्त होने पर तुरन्त शान्त हो जाती है, स्थिर-वास नहीं करती। ६१ में यह कहा गया कि मुझे यह मिले, यह मिले ऐसी दृढ़-निरन्तर प्रबल प्रवाह रूप से चलने वाली इच्छा का नाम काम है। ५६, ६० में निरूपण किया गया है कि ऐसी दृढ़ कदापि विश्राम न करने वाली कामनाएं ज्ञानी की निवृत्त हो जाती हैं। प्रारब्ध शेष के निमित्त साधारण शरीर स्थिरता के उपयोगी मात्र कामना का विरोध तो कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसी दशा में या तो प्रारब्ध शेष का निर्वाह नहीं होगा, अथवा ऐसी कामना का भी बोध अथवा मोक्ष से विरोध मानने में मोक्ष को ही असम्भव कहना होगा। यह कितनी महती भूल अथवा वञ्चना है कि जो वैराग्य और निरन्तर

कभी शान्त न होने वाली कामना से सन्तप्त आयु भर रहें, जिनके भोगों की लालसा प्रतिदिन बढ़ती जाय, और सदैव भोगों की वृद्धि तथा नाश की चिन्ता बनी रहे, फिर भी वह अपने आपको ज्ञानी अथवा जीवनमुक्त समझते रहें केवल इस आधार पर कि उन्होंने अद्वैत प्रक्रिया को भली प्रकार समझ लिया है, और इससे अन्यों की भी वञ्चना करते रहें।

२. मूढ़ ज्ञानी में केवल बुद्धि-भेद का तात्पर्य

यह जो ऊपर कहा गया है कि मूढ़ और ज्ञानी की बुद्धि में केवल अध्यास के भाव अभाव की विषमता है, देह, इन्द्रिय आदि की प्रवृत्ति निवृत्ति में भेद नहीं। यह भी पूर्वपक्षी के इस आक्षेप का उत्तर है कि ज्ञानी के लिये केवल निवृत्ति विधेय है। ज्ञानी को निवृत्ति मात्र करनी चाहिये। केवल इस पक्ष के उत्तर में यह श्लोक कहा गया है — कि ऐसा ठीक नहीं, प्रारब्ध

अनुसार दोनों प्रवृत्ति-निवृत्ति होती हैं। गुणातीत ज्ञानी इन गुणों के प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप व्यवहार से उदासीन रहता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि जैसे ज्ञानी, मोह आसक्ति युक्त प्रवृत्ति-निवृत्ति करता है, यथेष्टाचरण तथा विषय भोग करता है वैसे ही ज्ञानी भी करता है। यहां केवल प्रवृत्ति मात्र में साम्यता है। अन्तः आसक्ति-अनासक्ति का महान् अन्तर है। जैसा कि ज्ञानी में निवृत्त गुण की आकांक्षा तथा प्रवृत्त गुण के द्वेष का अभाव स्पष्ट कहा गया है। इसका विशेष विचार अवकाश होने पर फिर किया जायगा।

वैराग्य बोध तथा उपरति में बहुत कम वियोग होता है, और वह भी पराकाष्ठा मात्र की दृष्टि से, नितान्त वियोग नहीं होता। वैराग्य बोध और उपरति के पञ्चदशी में वर्णन से हमें यह भ्रान्ति होती है। यथा २८४ में कहा गया है कि वैराग्य उपरति के प्रतिबद्ध होने पर और

बोध पूर्ण होने पर मोक्ष तो निश्चित है यद्यपि दृष्ट दुःख का नाश नहीं होता। इससे कई सज्जन यह भूल करते हैं कि वेदान्त प्रक्रिया के सामान्य श्रवण-मनन से बोध तो हो ही गया है यदि वैराग्य उपरति नहीं, तो कोई विशेष हानि नहीं, मोक्ष तो हमारे हाथ में ही है और यदि विषय भोग भी लें तो क्या हानि है, अथवा जीते जी विषय सुख से भी क्यों वञ्चित रहा जाय, परन्तु, यह नितान्त भूल है। वह अधीरता आदि वश ७६, ८१, ८२ आदि को विना विचारे ही यह भूल करते और इस सम्पूर्ण प्रकरण के तात्पर्य की ओर ध्यान नहीं देते, एक आध श्लोक के आधार पर ही यह कृतकृत्यता के लिये अधीर हो रहे हैं। ७६ में यह स्पष्ट कहा गया है, वैराग्य, उपरति और बोध सहायक हैं, ८१. में कहा है कि तत्त्वबोध इन में प्रधान है, क्योंकि साक्षात् मोक्ष का देने वाला तो यही है, और वैराग्य उपरति उपकारक

है, तो ज्ञानी महोदय जब यह परस्पर सहायक हैं, अथवा मोक्ष के लिये बोध के प्रधान होने पर वैराग्य और उपरति उपकारक हैं, तो उपकारक वैराग्य और उपरति कि बना बोध कैसे सिद्ध होगा। साथ यह भी तो ७६ में कहा है कि यह तीन ही प्रायः एक साथ पाये जाते हैं कहीं-कहीं (बहुत कम) इन का वियोग होता है और इस वियोग का यह अभिप्राय नहीं है कि इन का नितांत अभाव होता है, पुनः इस की व्याख्या ८१ में की है कि इन तीन की ही अत्यन्त पक्व अवस्था अनेक पूर्व जन्म-कृत महान् पुण्य रूप तप का फल होता है। किसी पूर्व पाप के कारण कहीं-कहीं जनक सभा में याज्ञवल्क्य के समान किञ्चित् थोड़ी मात्रा में ही किसी काल में सहस्र गौ ग्रहणकामना-समय में इन में बाधा पड़ती है। तथा ८५-८६ में वैराग्य आदि की पराकाष्ठा बताते हुए, ८६ में इनके अनन्त तारतम्य रूप अवान्तर भेदों का भी

निरूपण किया है। पाठक मोह अथवा दुर्भाग्य-वश इन वचनों की ओर ध्यान नहीं देते। अपने बोध की तो पराकाष्ठा मान लेते हैं और नाममात्र के भी वैराग्य तथा उपरति की ओर ध्यान नहीं देते। यहां तो ऐसा वर्णन है कि किन्हीं-किन्हीं पुरुषों में किञ्चित् मात्रा में वैराग्य आदि कदाचित् ही प्रतिबद्ध होते हैं। प्रत्येक ज्ञानी में पूर्ण रूपेण सदैव ही प्रतिबद्ध नहीं होते. जैसे कि वर्तमान समय का वर्णन हुआ है कि कलियुग में सब ही वेदान्त का कथन करेंगे, परन्तु अनुष्ठान कोई विरला ही करेगा।

सो यदि साधक अपना हित चाहता है तो पञ्चदशी के अर्थ का अनर्थ न करे। प्रथम तो साधारण रूप में वैराग्य आदि के बिना ज्ञान होता ही नहीं, यदि कहीं हो भी तो कभी यत्किञ्चित् मात्रा में और अज्ञान जन्य कामना का स्वरूप भी ऊपर २६१ में कहा गया है कि मुझे यह मिले,

यह मिले—ऐसे कभी न तृप्त होने वाली कामना—अर्थात् मोक्ष उपयोगी ज्ञान की पराकाष्ठा होने पर वैराग्य उपरति का नितान्त अभाव तो कदापि नहीं होता, हां यहां केवल ज्ञान की पराकाष्ठा समान कहीं-कहीं और कभी वैराग्य उपरति की ज्ञान समान पराकाष्ठा का अभाव मात्र होता है। इस लिये इस सम्पूर्ण प्रकरण के मनन से यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि ज्ञानी में अज्ञानी समान यथेष्टाचरण तथा विषयभोग भी कभी संभव हो सकता है। अन्तर में ज्ञानी में अध्यास-जन्य संग आसक्ति की गंध भी नहीं होती। वाह्य देखने से प्रारब्ध वश उस में शरीर मात्रा आदि निर्वाहार्थ सामान्य अदृढ़ इच्छा तथा शास्त्रानुसार प्रवृत्ति मात्र सम्भव है। प्रारब्धवश शास्त्रमर्यादा के उल्लंघन का प्रश्न उपस्थित होने पर तुरन्त पञ्चदशीकार उत्तर देते हैं कि ऐसे अति असंग की बात मत कर, यही आचार्य का वास्तविक

तात्पर्य है कि ज्ञानी जिज्ञासा कालीन शम, दम आदि षट् सम्पत्ति से युक्त होने में उन के संस्कार-मात्र से कभी यथेष्टाचरण नहीं कर सकता, जब जिज्ञासा काल में ही प्रारब्ध में इतना वेग नहीं आया, तो ज्ञान होने पर कैसे ऐसा होगा। पश्चात् जो इन्होंने इसे भी स्वीकार किया तो यह केवल प्रौढ़वाद की दृष्टि से प्रारब्ध प्रबलता का प्रकरण होने से और ज्ञान की स्तुति के लिये जैसा कि पूर्वकालीन प्राचीन आचार्यों का भाव लिख चुके हैं अन्यथा उन का मुख्य उत्तर प्रथम ही है कि यथेष्टाचरण तो ज्ञानी के लिये कदापि सम्भव नहीं।

तृप्ति दीप प्रकरण १३६-२५१

ज्ञानी अज्ञानी के व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाले तृप्ति दीप के विभाग।

१३६-१५० प्रारब्धवश भोग में क्लेश तथा अल्पभोग से सन्तुष्टि।

१५१–१६२ प्रारब्ध के तीन भेद—(१) इच्छा प्रारब्ध, (२) अनिच्छा, (३) पर इच्छा।

१६३–१७३ इच्छा निषेध तात्पर्य—भोगमात्र परिसमाप्त इच्छा का निषेध नहीं प्रत्युत इच्छा में व्यसन-भोग आसक्ति तथा चिन्ता उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं रहती। दृढ़ राग का निषेध, रागाभास की स्वीकृति।

१६२–२८१ भोक्ता चिदाभास् का साक्षी से विवेक तथा चिदाभास का नाश तथा स्वतः भोग अभाव का निश्चय कर त्रिविध शरीरगत ज्वर के सन्ताप का अभाव।

इस प्रकरण का निम्नलिखित आधारभूत बृ० ४, ४, १२ श्लोक है जिसके तात्पर्य का विस्तृत विवेचन जीवनमुक्त की शोक-निवृत्ति तथा निरंकुश तृप्ति को व्यक्त करने के लिये इस प्रकरण में किया गया है:—

यदि यह जीव (चिदाभास्) (१-६ श्लोक) महावाक्य (५८-६६) तथा श्रवण आदि (६७-१२३) द्वारा प्रत्यक्ष जाने कि मैं कूटस्थ (ब्रह्मात्मा) हूं (१३-१८) तो किस भोग्य की कामना से (१३६-१६१) तथा किस भोक्ता के काम के लिये (१६२-२३३) शरीरगत व्याधि, क्रोध शान्ति आदि ज्वर से संताप माने (२२३-२५१)। [ज्ञानी की निरंकुश तृप्ति का वर्णन २५२-२६४]।

पूर्वोक्त विभाग (१३६-२५१) की संगति के लिये पूर्व भाग (१०३-१३६) का वर्णन—

विपरीत भावना [देह आदि आत्मा हैं (मैं देहादि हूँ) तथा जगत् सत्य है] को निवृत्ति के लिये एकाग्रता का साधन (१) तत्त्व उपदेश से पूर्व उपासना ०४. (२) कृतोपासक के लिये ब्रह्माभ्यास १०५. केवल ब्रह्म का चिन्तन, उसी का कथन तथा उसी का परस्पर बोध कराना। इस तत्परता को ब्रह्माभ्यास कहते हैं १०६.। कृषि,

वाणिज्य, सेवा, काव्य, तर्क आदि विक्षेप के विशेष कारण का त्याग .४, २७.

(श्रुति सम्मति मु. २, २, ५, वृ ४, ४, २१; २२८ मूल)

(प्र.) जनक आदि ने राज्य कैसे किया (उ.) दृढ़ बोध के कारण। यदि आप को भी दृढ़ बोध हो तो तर्क पढ़ो अथवा कृषि करो १३०।

(प्र) तत्त्ववित् संसार की असारता को जानते हुए क्यों ऐसा व्यवहार करते हैं ?

(उ.) मिथ्या वासना के दृढ़ होने पर ज्ञानी यह जानते हुए कि प्रारब्ध फल अवश्यंभावी है इस लिये प्रारब्ध क्षय की इच्छा से अपने-अपने कर्मानुसार विना क्लेश के वर्तते हैं १३१।

(प्र.) तो प्रारब्धबल से अनाचार में भी प्रवृत्ति हो सकती हैं। (उ.) मर्यादा उल्लंघन की शंका मत करो, स्वकर्मजन्य विवशता के कारण यदि इसे भी स्वीकार किया जाये तो बताओ कर्म का

विरोध कौन कर सकता है। विद्वान् के विषय में ऐसा प्रारब्ध-प्राबल्य प्रौढ़वाद है १३२.।

(प्र) प्रारब्ध कर्म यदि अवश्य भोगना ही है तो फिर ज्ञानी अज्ञानी में क्या भेद है। (उ.) ज्ञानी तथा अज्ञानी के लिये प्रारब्ध कर्म विवशता समान होने पर भी ज्ञानी धैर्य रखता हुआ क्लेश नहीं मानता; परन्तु अज्ञानी अधीरता के कारण क्लेश मानता है ३३.।

क्लेशाभाव कारण आत्मा के साक्षात्कार ज्ञानवाला विपर्यास (देहात्मभाव आदि) के सम्यक् बाध से किस भोग्य पदार्थ की इच्छा करे अथवा किस भोक्ता की काम के लिये अर्थात् भोग्य तथा भोक्ता के मिथ्या होने से त्रिविध शरीरगत ज्वर के कारण सन्ताप करे १३५.

संगति (१६६-६०) बृ. ४, ४, १२ अथवा इस प्रकरण के आधारभूत श्लोक

७१ के उत्तरार्ध भाग जिस का १३५ में ऊपर वर्णन है—उस की व्याख्या (१६६-१६०) में की गई है। प्रबल प्रारब्ध वश भोग में क्लेश तथा प्रलय में सन्तुष्टि। ज्ञानी की भोग इच्छा का अभाव १३६–१५०

जगत मिथ्या है यह बुद्धि काम्य=भोग्य तथा कामुक भोक्ता का बाध कर देती है। उनके अभाव में स्नेह-रहित दीप के समान सन्ताप स्वतः शान्त हो जाता है १३६.।

इन्द्र जाल समान भोग मिथ्या है तथा दोष-दृष्टि से भोग इच्छा का उन्मूलन हो जाता है १३७–१४१। क्षुधा से पीड़ित होने पर भी साधारण जन विष खाने की इच्छा नहीं करता, तो विवेकी जिस की तृष्णा विषय नष्ट हो चुकी है यह विष है ऐसा जान कर उस विष को कदापि नहीं खा सकता

४२। यदि प्रारब्ध कर्म के प्राबल्य से ज्ञानी को भी भोग इच्छा हो तो क्लेश मानते हुए वह भोगता है जैसे बलवान् राजा से विवश हुआ पुरुष ४३., अथवा (ब्रह्म विचार में) श्रद्धा रखने वाला ज्ञानी गृहस्थी इस विचार से निरन्तर क्लेश पाता है कि अभी भी मेरे कर्मनाश नहीं हुए ४४। यह भ्रान्त ज्ञान जन्य संसारताप नहीं प्रत्युत वैराग्य है ४५। पूर्वोक्त विवेक के कारण अति खेद मानने से थोड़े ही भोग से सन्तुष्ट हो जाता है, अन्यथा अनन्त भोग से भी कभी तृप्त नहीं होता ४६। निदिध्यासन से निगृहीत (स्वाधीन) मन का (कामना अभाव के कारण) थोड़ा सा भी लीला भोग (आभास) बहुत माना जाता है और क्लिष्ट होने से इस में विस्तार नहीं होता।

इच्छा, अनिच्छा, पर इच्छा रूप तीन प्रकार के प्रारब्ध का वर्णन [१५१-१६२]

प्रारब्ध वश दुःख सुख भोग।

(प्र.) दोष दर्शन रूप विवेक के जागृत होने पर प्रारब्ध कर्म कैसे भोग इच्छा उत्पन्न करेगा।

(उ.) यह दोष नहीं है, क्योंकि प्रारब्ध तीन प्रकार की देखी जाती है—(१) इच्छा, (२) अनिच्छा, (३) पर-इच्छा।

१. इच्छा प्रारब्ध :—रोग-हेतु अन्न आदि के सेवन करने वाले, चोर तथा राज-दारा में आसक्त जन अपने अनर्थ को जानते हुए भी प्रारब्ध कर्म से विवश हुए अपने अनर्थ के विषय की इच्छा करते हैं। १५३

यह प्रारब्ध फल है, क्योंकि ईश्वर भी इसका निवारण नहीं कर सकता है, ३, ३३ गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा है। ५४

आगमयुक्ति जन्य विवेक वाला आनन्दगिरि-अथवा गुण-दोष विवेक वाला मधुसूदन—ज्ञानी भी पूर्वकृत धर्माधर्म आदि जन्य संस्कार रूप प्रकृति के

अनुरूप ही चेष्टा करता है, तो मूर्ख का क्या कहना है। इसलिये सब प्राणी प्रकृति अर्थात् पूर्वकृत धर्म, अधर्म संस्कार के अधीन वर्तते हैं, प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का मेरा अथवा किसी अन्य का निरोध क्या करेगा ? अर्थात् निग्रह व्यर्थ है। ५५

अवश्यंभावी भावों का प्रतिकार यदि सम्भव होता, तो सामर्थ्यशाली नल, राम और युधिष्ठिर दुःख में न पड़ते। ५६

२. अनिच्छापूर्वक प्रारब्ध का समर्थन— गीता ३, ३६, ३७ तथा १८, ६० में पाया जाता है।

हे अर्जुन अपने स्वभाव-जन्य कर्म से बाधित होकर जो कार्य मोह से तू नहीं करना चाहता वह भी विवश होकर करेगा। गीता १८. ६०, १६१।

३. पर-इच्छा प्रारब्धः—न अनिच्छा से, न इच्छा से प्रत्युत परोपकार बुद्धि से युक्त परइच्छा पूर्वक यह दुःख-सुख को भोगता है।

वृ ४,४,१२ उक्त ज्ञानी इच्छा निषेध तात्पर्य भोगमात्र परिसमाप्त इच्छा का निषेध नहीं, प्रत्युत इच्छा की व्यसनजनकता रूप सामर्थ्य मात्र का निषेध है।

(प्र.) यदि पूर्वोक्त रीति से ज्ञानी के भी इच्छा का अङ्गीकार है, तो पूर्व जो इच्छा का निषेध किया है कि ज्ञानी किस भोग्य की इच्छा करे, तो इस परस्पर विरोध का क्या समाधान है। (उ.) यह इच्छा मात्र का निषेध नहीं। प्रत्युत इच्छा की प्रवृत्ति-जनकता रूप सामर्थ्य के बाध का तात्पर्य है–१६३। यथा भूने हुए बीज स्वरूप से विद्यमान होने पर भी अंकुर आदि कार्य नहीं उत्पन्न कर सकते, ऐसे विद्वत्-इच्छा विद्यमान होने पर भी भोग्य पदार्थ के अभाव के ज्ञान से (व्यसन आदि) कार्य नहीं कर सकती ६४। यथा दग्ध बीज न उग सकने पर भी खाने के काम

आता है, वैसे ही विद्वत्-इच्छा भी (अल्प भोग) को सिद्ध करती है, विविध व्यसन (विपद् आदि रूप) नहीं करती ६५. । भोगमात्र से चरितार्थ होने से प्रारब्ध मात्र का नाश हो जाता है । उसके द्वारा व्यसन उत्पन्न नहीं होता है ६६. । व्यसन हेतु भ्रम का रूप—यह भोग मेरा नाश न हो, उत्तरोत्तर बढ़ता जाय, इसमें कोई विघ्न-बाधा न डाले, मैं इन पुष्कल भोगों के कारण धन्य हूँ—ऐसा भ्रम होता है । जो भावी (प्रारब्ध में) नहीं है वह कभी हो नहीं सकती और भावी को कोई अन्यथा नहीं कर सकता । यह चिन्ता रूप विष का नाशक बोध उपर्युक्त भ्रम का निवर्तक है । ६८. भोग सम होने पर भी भ्रान्त को व्यसन होता है न कि विद्वान को, अशक्य अर्थ के संकल्प से भ्रान्त को उपर्युक्त विविध व्यसन होता है । ६९. भोग को मायामय जानकर आस्था (आसक्ति)

को संकोच करने से भोग करता हुआ भी अशक्यार्थ विषयक संकल्प नहीं करता, तो व्यसन कहां से होगा।

संगति १७३-१८४ प्रपञ्च के मिथ्यापने के ज्ञान का प्रारब्ध भोग से विरोध का आक्षेप तथा इसका परिहार—दृढ़ राग का निषेध—

तत्त्वविद्या का आग्रह है कि जगत् इन्द्रजाल वत् मिथ्या है, और प्रारब्ध का आग्रह है जीव के सुख-दुःख रूप भोग में, न कि इसके सत्यत्व में। विद्या द्वैत का नितान्त निरास नहीं करती। बृ० ४, ५, १५। सुषुप्ति मुक्ति विषयक है १८३, अन्यथा याज्ञवल्क्य आदि कैसे आचार्य होते ८४। निर्विकल्प समाधि ही अद्वैत दर्शन का हेतु होने से अपरोक्ष विद्या कहना ठीक नहीं, अन्यथा सुषुप्ति विद्या क्यों नहीं ८५, इसलिये

आत्मधी ही विद्या है न कि द्वैत विस्मृति ८६। दुष्ट चित्त का निरोध जगत् के मायामयत्व के बोध के लिये हम को इष्ट ही है। इसलिये किस भोग की इच्छा करे। उपर्युक्त ज्ञानी के इच्छानिषेध का तात्पर्य यह है कि ज्ञानी इच्छा करते हुए भी अज्ञानी समान इच्छा न करे। १६० योगवसिष्ठ में दो वचन आते हैं यथा (१) चित्त व्यवहार भूमि में राग अज्ञान का लिंग है, वह तरु हरा कैसे हो सकता है जिसकी कोटर (कोख) में अग्नि है, (२) शास्त्र-तात्पर्य के पूर्ण होने पर, इस ज्ञान से ही मुक्ति होती है, रागादि भले हो, उनका अस्तित्व मात्र अपराध नहीं है। उपर्युक्त रीति से ऐसे-ऐसे वचनों के परस्पर विरोध का परिहार होता है, प्रथम राग-निषेध विषयक वाक्य दृढ़ राग का निषेध करता है, और दूसरा रागाभास-विषयक है। १६१

१९२-२२२ 'कस्य कामाय' इस भाग का अर्थ—भोग के अभाव से भोगइच्छा-जन्य सन्ताप का अभाव।

(२०५-२१५ मुमुक्षु को आत्म-विचार में साव-धान रहना चाहिए। (११,-१३, १५.)

२१६-२२ भोक्ता चिदाभास को अपने मिथ्यात्व के ज्ञान से भोग में अनाग्रह। चिदाभास भोक्ता का असंगात्मा साक्षी से भिन्न है, क्योंकि चिदाभास का विलय सुषुप्ति आदि में साक्षी अनुभव करता है १८।

पूर्वोक्त रीति से चिदाभास भोक्ता का विवेक कर तथा भोक्ता का नाश निश्चय कर पुनः भोग की वाञ्छा नहीं करता—मृत्यु के सन्निकट भूमि में पड़ा कौन विवाह की इच्छा करता है ? २१९ अपने भोक्ता भाव से लज्जित होता हुआ तथा क्लेश

मानता हुआ कि अभी तक प्रारब्ध कर्म क्षीण नहीं हुआ प्रारब्ध को भोगता है। २२०.

२२३-२५१ त्रिविध शरीर-गत ज्वर के कारण ज्ञानी में संताप का अभाव।

तीन शरीर कहे जाते हैं—(१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण। इनमें ज्वर के भी तीन भेद हैं—२२३. शरीर में वात-पित्त-कफजन्य कोटि व्याधियां तथा दुर्गंध, कुरूपता, दाह भंग आदि ज्वर हैं। २२४ लिङ्ग देह में काम, क्रोध आदि तथा दम, शम आदि ज्वर हैं जो कि प्राप्ति अप्राप्ति द्वारा क्रम से नर को दुःख देते हैं २२५। कारण शरीर मैं अपने को तथा अन्य को नहीं जानता मानो नष्ट समान ही है ऐसा आगामी दुःख के बीज रूप ज्वर इन्द्र शिष्य ने प्रजापति गुरु से कहा था। (८, ३, ११, १) २२६।

ये तीन ज्वर देह में स्वभाविक हैं—इनके

वियोग में शरीर ही नहीं ठहरता २२७। जैसे तन्तु के वियोग में पट, मिट्टी के वियोग में घट २८। प्रकाशमात्र स्वभाव वाले चिदाभास में स्वतः कोई ज्वर नहीं तो साक्षी में ज्वर की क्या कथा। २ ६.

I २४३-२५१ ज्ञानी के प्रारब्ध पर्यन्त व्यवहार के संभव का प्रतिपादन ४५-४६ ५१ V. I (चिदाभास की छठी अवस्था शोकमोक्ष किमिच्छन्न——से कही गयी है।

२५२-२६८ ज्ञानी चिदाभास की सप्तमी निरंकुश तृप्ति अवस्था।

प्रकरण तात्पर्य विवेचनः—

संगति १०३-१३२ तत्त्वबोध के लिये तथा दृढ़बोध उपरान्त क्या करना चाहिये। इसका निरूपण है अर्थात् ब्रह्म-अभ्यास-काल में कृषि-वाणिज्य-तर्क-अभ्यास का त्याग करे, क्योंकि यह

विक्षेप का मूल हैं १२४-२७, और जनक आदि समान दृढ़बोध उपरान्त कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं १३० । परन्तु सन्देह होने पर कि ज्ञानी ऐसे व्यवहार में प्रवृत्त ही क्यों होते हैं। कहते हैं, कि भोग्य मिथ्या है इस भाव के दृढ़ होने पर भी ज्ञानी यह जानते हुए कि प्रारब्ध फल अवश्यंभावी है इसलिये केवल प्रारब्ध क्षय की इच्छा से कर्म अनुसार विना क्लेश के वर्तता है १३१ ।

१. ज्ञानी के व्यवहार अथवा भोग का स्वरूप-(१३१) में वर्णन हो चुका कि यह प्रारब्ध के कारण विवशता से होता है । प्रथम तो जगत मिथ्या है इस ज्ञान से इच्छामात्र का ही उन्मूलन हो जाता है १३७-१४१, विष को जानकर कौन खा सकता है १४२, यदि प्रारब्ध-वश ज्ञानी में भी भोग-इच्छा उत्पन्न हो तो क्लेश मानते हुए ही भोगता है; जैसे कोई बलवान् राजा बाधित करता

हो। रुचि से कदापि नहीं भोगता ४३। गृहस्थी ज्ञानी यह सोचकर कि अभी तक उसके प्रतिबन्धक कर्म नाश नहीं हुए, जो कि वह जीवन मुक्ति का परम आनन्द ले सके। ऐसे क्लेश मानते हुए ही भोग में प्रवृत्त होता है ४१। ऐसे भोग में क्लेश मानने से अल्प भोग में ही सन्तुष्ट हो जाना स्वभाविक है, तो अनन्त भोग-वृद्धि के लिये अपार चिन्ता क्यों करेगा १४६। ऐसी दशा में ज्ञानी के भोग का लौकिक नाम भी सार्थक नहीं होता। प्रथम तो वह क्लेश मानकर ऐसा कर रहा है क्लेश के साथ सुख का उपभोग कैसे कहा जा सकता है। यदि अत्यन्त दृढ़बोध के कारण क्लेश का अभाव ही स्वीकार किया जाय तो फिर भोग में भी उपेक्षा ही माननी होगी, तो भी इस को साधारण दृष्टि से भोग नहीं कहा जा सकता है। लौकिक दृष्टि में यह भोग है। ज्ञानी की आभ्यन्तर मानसिक अवस्था की

दृष्टि से यह क्लेश दुःख अथवा नितान्त उपेक्षा है यहां भोग और अभोग एकत्रित हो रहे हैं। भोग दृष्टि से ज्ञानी ने वास्तव में प्रारब्ध पर भी विजय पा ली है, सो यह लीला भोग है। इस परमोपेक्षा, परम तृप्ति को पामर ज्ञान अभिमानी कैसे समझ सकते हैं। वास्तव में ज्ञानी की स्थिति तथा अनुभूति को ज्ञानी ही समझ सकता है। परन्तु साधारण आभास ज्ञानी के भोग में ज्ञानी के भोग की भ्रान्ति को निकालना तो इतना कठिन नहीं न साधक के लिये, न साधारण जनता के लिये। यदि उपर्युक्त कसौटी से काम लिया जाय, ज्ञानी के भोग में साधारण रुचि का लेशमात्र नहीं होता, इसमें या तो क्लेश होता है अथवा उपेक्षा, विषयों के पीछे वह उचित अनुचित विधि से मारा-मारा नहीं फिरता। सामान्य प्रारब्ध-जन्य अल्पभोग से ही सन्तुष्ट हो निवृत्त शान्त हो

जाता है। ऐसे विषय में सुख कहां जो इसका नाम विषय-समाधि कहा जाय।

२. त्रिविध प्रारब्ध वाले प्रकरण का तात्पर्य—अनिच्छाचोरी आदि दृष्टान्तमात्र है प्रारब्ध प्रबलता में, न कि चोरी आदि व्यवहार में। इसके उपरान्त (१५० से ६७) में जो त्रिविध प्रारब्ध का वर्णन है इच्छा, अनिच्छा पर-इच्छा यह केवल ज्ञानी के शेष प्रारब्ध के कारण विवश प्रवृत्ति तथा भोग के लिये है न कि अज्ञानी जन समान यथेष्टाचारण तथा भोग सिद्ध करने के लिये। भोग की दृष्टि से पूर्व प्रकरण का विवेचन विशेष विचारने योग्य है और आने वाले दो प्रकरणों अर्थात् १६६–१७३–१८४ से भी संदेह-कालिमा से रहित यह निर्णय होता है। अनर्थ जानते हुए भी प्रारब्ध-वश जो चोरी आदि का वर्णन है वह ज्ञानी में चोरी के सिद्ध करने के लिये नहीं। यह तो केवल

प्रारब्ध विवशता में दृष्टांत मात्र हैं। ज्ञानी के प्रारब्ध का १६५ में वर्णन है कि भुने बीज समान भोगमात्र में कृतकार्य होती है, व्यसनरूप फल उत्पन्न नहीं करती। १६७ में व्यसन का रूप यह बताया है कि यह भोग मेरा नाश न हो. उत्तरोत्तर बढ़ता जाय, इसमें कोई विघ्न-बाधा न हो। मैं इन विपुल भोगों करके धन्य हूँ, फिर १७० में कहा है कि वह भोग को मिथ्या जानता हुआ संकल्प ही नहीं करता, व्यसन की क्या कथा। वह भोगों के पीछे पामर समान नहीं फिरता, भोग उसके पीछे-पीछे मारे-मारे फिरते हैं। वह विवशता से स्वीकार करते हैं। सो ज्ञानी अज्ञानी के राग अथवा भोग का यह भेद है। ऐसे ही ·१६-२२२ में भोक्ता चिदाभास को अपने मिथ्यात्व के ज्ञान से उसे भोग में अनाग्रह का निरूपण है, सो प्रारब्ध वश ज्ञानी के भोग में पूर्वोक्त लक्षणों के अतिरिक्त यहां बताया गया है कि भोगवृद्धि अथवा नाश के

लिये चिन्ता ज्ञानी में नहीं होती। वह केवल सुख दुःख भोग में ही कृतकार्य होती है। इसलिये तृप्ति-दीप और चित्र-दीप प्रकरण के किसी भाग का पूर्वापर-संगति तथा आचार्य के भाव को दृष्टि में रखने से यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि ज्ञानी यथेष्ट चेष्टा तथा भोग अज्ञानी समान कर सकता है। प्रारब्ध वश बाह्य प्रवृत्ति देखी जाती है, भोग से नितान्त असंग रहता है, और यह भोग का भाव नितान्त दूसरे के लिये भी अगम्य नहीं। क्योंकि इन दोनों व्यवहार के बाह्य रूप आदि में भी भेद होता है। सो इसके आधार पर ही अपने तथा अन्य के ज्ञान का निर्णय करना चाहिये और यूं ही मोहवश आपना तथा पर का नाश नहीं करना चाहिये। द्वैत-विवेक-प्रकरण में इस प्रसङ्ग में जो आगे उद्धृत किये गये हैं वह सम्पूर्ण अशास्त्रीय द्वैत (काम आदि अथवा मनोराज्य आदि) सर्वथा जिज्ञासु, तथा ज्ञानी के

लिये त्याज्य बताया गया है। जिज्ञासु के लिये ज्ञान के प्रतिबन्धक रूप से और ज्ञानोपरान्त जीवन मुक्ति के सुख के लिये। सो इन सब प्रकरणों के मेल से यही निर्णय होता है कि केवल प्रारब्ध की विवशता की दशा में क्लेश मानते हुए अथवा नितान्त उपेक्षा सहित ज्ञानी के इच्छा, भोग तथा प्रवत्ति का वर्णन है जो किसी रूप में भी अज्ञानी के यथेष्ट आचार अथवा रागयुक्त भोग के समान नहीं।

(ग) पञ्चदशी द्वैत-विवेक प्रकरण ४३-६६

द्वैत-विवेक प्रकरण में द्वैत के दो भेदों का विवेक किया गया है, क्योंकि इन दो का विवेक होने से बन्ध का हेतु रूप द्वैत, जो जीव को त्यागना चाहिये, सम्यक् जाना जाता है। ४१ ईश्वर-निर्मित द्वैत बाधक नहीं। है क्योंकि, इस के मिथ्यापने के ज्ञान से ही अद्वैत ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है, तथा गुरु शास्त्र आदि रूप से साधक

भी है, तथा उसकी निवृत्ति भी जीव की समर्थ में नहीं है इस लिये ईश्वर-निर्मित द्वैत-भले रहे। ४२

जीव-द्वैत का भेद तथा इसकी त्याज्यता—
शास्त्रीय द्वैत ग्रहण अवधि-साक्षात्कारपर्यन्त

जीवद्वैत के दो भेद हैं (१) शास्त्रीय, (२) अशास्त्रीय, तत्व-बोध-पर्यन्त शास्त्रीय द्वैत का ग्रहण करना चाहिये ४३।

प्रत्यक् रूप ब्रह्म का विचार—अर्थात् श्रवण आदि शास्त्रीय मानस् जगत् है। अद्वैत आत्म-तत्त्व का ज्ञान होने पर वह भी त्याज्य है। ऐसा श्रुति का उपदेश है ४४, धीर ब्राह्मण उस ब्रह्म को जान कर प्रज्ञा, एकाग्रता का अभ्यास-निष्ठा करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास न करे, क्योंकि यह वाक और मन का श्रम मात्र है। बृ० ४, ४, २१, ४७

२. अशास्त्रीय द्वैत त्याज्यता, ज्ञान-पूर्व बोध के लिये ज्ञानोपरान्त जीवन मुक्ति के लिये। अशास्त्रीय द्वैत के भी दो भेद हैं—(१) तीव्र (२) मन्द। काम क्रोध आदि तीव्र हैं और मनोराज्य मन्द है ४६। यह दोनों बोध की प्राप्ति के पूर्व त्यागने चाहियें, क्योंकि शम तथा समाधान साधनों में कहे गये हैं वृ० ४, ४, १५, ५० और बोध से उत्तर काल में दोनों का त्याग करना चाहिये। जीवन्मुक्ति की सिद्धि के लिये क्योंकि काम आदि क्लेश रूप ही तो बन्धन हैं उससे युक्त को जीवन्मुक्ति नहीं लाभ हो सकती ५१। (प्र)जीवन्मुक्ति भले न हो, परन्तु(जन्म आदि संसार से उद्विग्न होने से (मेरे लिये (परम पुरुषार्थ रूप) विदेह मुक्ति ही पर्याप्त है। (उ.) (ऐहिक भोग की लालसा से जब जीवन्मुक्ति को तू त्यागता है, तो) तू स्वर्गमात्र से भी सन्तुष्ट हो जायगा, तो

पुनर्जन्म भी तुम्हारा अवश्य होगा। (स्वर्ग सुख के लोभ से विदेह मुक्ति भी छोड़ देगा।

प्रश्न—यदि तू कहे कि क्षय, अतिशय आदि दोषों के कारण स्वर्ग हेय है इस लिये उसको ग्रहण नहीं करूँगा।

उत्तर—तो सकल पुरुषार्थ का विघातक होने से काम आदि, जो दोष स्वरूप ही है, त्याज्य क्यों नहीं ५३। तत्त्व को जान कर भी यदि काम आदि (सम्पूर्ण इहलोक तथा परलोक भोग विषयक) को नहीं त्यागोगे, तो (तत्त्ववित् के अभिमान से) विधि-निषेध शास्त्र का उलङ्घन करने से काम आदि के अधीन व्यवहार करने से तुझे यथेष्टा-चरण की प्राप्ति होगी ५४।

प्र:—यथेष्टाचरण में क्या दोष है।

(उ.) यदि ब्रह्मात्म रूप अद्वैत तत्त्व के जानने वाला भी यथेष्टाचरण करे, तो अशुचि भक्षण में कुत्ते और ज्ञानी में क्या भेद होगा ५५. बोध

पूर्व कामादि नितान्त हेय हैं और बोध के उपरांत कामादि विक्षेप के होने से जीवन्मुक्ति का आनन्द कभी प्राप्त नहीं हो सकता। जब इस अवस्था में शास्त्रीय द्वैत भी त्याज्य कहा तो अशास्त्रीय को त्याज्य जताने की आवश्यकता ही नहीं थी। यह तो केवल ज्ञानाभिमानी वञ्चक केलिए ही कहे गए हैं, अथवा मन्द-बुद्धि जिज्ञासु के लिए और श्री सुरेश्वराचार्य के उपर्युक्त श्लोकों को उद्धृत किया गया है, अर्थात् सर्वमान्य आचार्य ने कैसे ऐसे ज्ञानाभिमानी की हँसी के रूप में भरसक निंदा की है कि यदि इस ज्ञान के भरोसे विदेह-मुक्ति की आशा पर वर्तमान भोग को नहीं त्यागेंगे, तो स्वर्ग आदि सुख के लोभ से विदेह मुक्ति भी त्याग दोगे और ऐसे पुनर्जन्म की भी प्राप्ति अवश्य होगी, और काम आदि के त्याग के बिना, उसके वेग के अधीन होकर यथेष्ट आचरण से भी नहीं बच सकोगे। और ऐसे

लोक-निंदा के भी भागी बनोगे। यह तुम्हें इस ज्ञानाभिमान का कटु फल प्राप्त होगा। क्या ग्राम-शूकर समान व्यवहार तत्त्ववित् का शोभा देता है। इस निंदा के पश्चात् इन दोनों प्रकार के अशास्त्रीय व्यवहार काम आदि तथा मनोराज्य को जीतने के लिए उपाय भी बताए हैं और प्रबल प्रारब्ध को दशा में उस पर भी विजय पाने के लिए अभ्यासपाटव का उपाय बताया है। अंततः परम ध्येय रूप से यह निर्धारित किया है कि तूष्णीं-भाव से अतिरिक्त अधिक पुरुषार्थ नहीं, अर्थात् ज्ञानी के लिए कि जगत् मिथ्या है तथा केवल आत्मा ही परमानन्द-स्वरूप है। इस ज्ञान के आधार पर इस तूष्णींभाव में स्थित होना सर्वोत्तम तथा सहज है। तृप्तिदीप तथा चित्र-दीप में जो भी ज्ञानी के राग, भोग तथा प्रवृत्ति का वर्णन है वह केवल तीव्र प्रारब्ध के कारण विवशता से कहा है। भोग में ज्ञानी का

आग्रह नहीं होता, अपने मन्द भाग्य के लिए ज्ञानी दुःखी होता है, क्लेश मानते हुए भोग करता है, अल्प से ही संतुष्ट हो जाता, हानि वृद्धि की चिंता नहीं करता, भोग-विषयक संकल्प नहीं करता, फिर व्यसन का क्या कहना ? सो यह ज्ञानी का भोग आदि अज्ञानी के भोग से नितांत निराला है, यथार्थ दृष्टि से क्लेश रूप अथवा उपेक्षा होने से अभोग ही है, फिर आचार्य ने यह भी बताया कि वैराग्य, उपरति और बोध प्रायः एकत्र पाए जाते हैं, कहीं किसी काल में बहुत थोड़ी मात्रा में किसी ज्ञानी में प्रारब्धवश वैराग्य आदि में न्यूनता होती है न कि वैराग्य आदि का नितांत अभाव होता है, जैसे कि हम प्रायः आजकल के ज्ञान-अभिमानियों में पाते हैं। सो पञ्चदशी के किसी एक-आध श्लोक अथवा प्रकरण से भूल में नहीं पड़ना चाहिए। अपने तथा समाज के

पतन तथा नाश के महान् पाप से भय करना चाहिए।

क ६ विचारसागर अन्तर्गत एक महान् हानिप्रद भूल है कि ज्ञानी की विषय भोग में भी समाधि है।

साधारण जनता में ग्रन्थ का प्रचार—

साधारण जनता में जो केवल हिन्दी ही जानते हैं, और इस लिये वे अद्वैत सिद्धान्त के संस्कृत में मूल ग्रन्थ लघु तथा बृहत् भगवान् भाष्यकार आदि कृत अध्ययन नहीं कर सकते, उन में आजकल वेदान्त-सिद्धान्त के प्रचार का मुख्य ग्रन्थ विचारसागर है। इस में दो-एक प्रकरण ऐसे हैं जो व्यावहारिक दृष्टि से साधकों में महान् भ्रान्ति का कारण बने हैं और इस भ्रान्ति से उत्पन्न व्यवहार की शिथिलता साधकों के लिये महान् अनर्थ का हेतु तथा जनता में

वेदान्त के निरादर का कारण बन रही है। इस लिये साधकों के हित की दृष्टि तथा अद्वैत वेदान्त के उचित सम्मान के स्थापन की दृष्टि से कुछ प्रसंग इस ग्रन्थ से विवश होकर उद्धृत किये जाते हैं ताकि साधक जन वेदान्त को केवल बुद्धि का खेल न समझ कर, संसारिक भोगों के महान् अनर्थकारी कूप में वेदान्त के नाम पर न पड़ें।

विचारसागर का मूल पाठ--

(क) विषय में सुख-अनुभूति की अद्वैत वेदान्त-सम्मत शैली :—वांछित विषय द्वारा मन के स्थिर होने से आत्मानंद का भान—

११६ प्रश्न—हे भगवन्! जो मेरा आत्मा आनन्द रूप होवे तो विषय के सम्बन्ध से आनंद का आत्मा विषै भान नहीं हुवा चाहिये। यातैं आत्मा आनन्द रूप नहीं किन्तु विषय के संबंध सैं आत्मा विषै आनंद होवै है।

११७ उत्तर—हे शिष्य! आत्मा सैं विमुख हैं बुद्धि जा की एसो जो पुरुष ताकूं विषय की इच्छा होवै है। या स्थान विषै जो भोग का साधन होवै सा विषय कहिये है। या तैं धन पुत्रादिकन का बी ग्रहण करि लेना।

ता विषय की इच्छा तै बुद्धि चंचल रहै। ता चंचल बुद्धि में आत्मस्वरूप आनंद का आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवै है। औ-(२) जिस विषय की इच्छा हावै सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै। तब या पुरुष की बुद्धि क्षणमात्र स्थित हाए के अंतमुख बुद्धि की वृत्ति होवै है। ता अंतमुख वृत्ति विषै आत्मा का स्वरूप जो आनंद, ता का प्रतिबिंब हावै है। तिस आत्मस्वरूप आनंद के प्रतिबिंब कुं अनुभव करिके पुरुष कूं भ्रांति होवै है जो 'मेरे कूं विषय सैं आनंद का लाभ हुआ है। परन्तु विषय में आनंद है नहीं।

[ख] ज्ञानी की विषय भोग में भी समाधि है।

११८. प्रश्न—ज्ञानी कूं विषय की इच्छा और ता के संबंध सैं पूर्व रीति सैं सुख का भान होवै है अथवा नहीं ?

११९. उत्तरः—द्वविध आत्मविमुख हैं, विषय आनंद स्वरूप आनंद से न्यारा नहीं।

हे शिष्य ! तूं चित्त और श्रवण कूं सावधान करके सुन। पूर्व जो हमनै आत्मविमुख कहा है से आत्मविमुख अज्ञानी ही नहीं होवै। किंतु ज्ञानवान् की बी बुद्धि जब व्यवहार में आई जावै तब वह तत्त्व कूं भूलि जावै है तिस काल विषै ज्ञानवान बी आत्मविमुख ही होवै है। और ज्ञानी की बुद्धि जो सदा आत्माकार ही रहै तौ भोजनादिक व्यवहार न होवै। यातैं आत्मविमुख बुद्धि दोनूं वा की वनै है। अज्ञानी की तौ बुद्धि सदा

आत्मविमुख है और ज्ञानी की बुद्धि आत्मविमुख होवै तिस काल मैं ज्ञानी कूं भी इच्छा और विषय के सबंध सें आत्मस्वरूप आनन्द का भान अज्ञानी के समान है परन्तु इतना भेद है :—

(१) विषय के संबंध से जो आनन्द का भान होवै है ताकूं ज्ञानी तौ जानै है यह आनंद है सो मेरे स्वरूप से न्यारा नहीं। किन्तु ताका ही आभास है या तैं ज्ञानी कूं विषय-भोग में ही समाधि है।

(२) अज्ञानी नहीं जानै है जो मेरा ही स्वरूप आनंद है।

दोनूं का स्वरूप आनंद है, विषय सैं केवल अज्ञानी कूं भ्रांति होवै है।

सो उपर्युक्त जो कहा गया है कि ज्ञानी कूं विषय भोग सें भी समाधि है, यह वेदान्त सम्बन्धी मूल शास्त्रों के तत्पर्य के नितान्त विरुद्ध है। बाह्य समाधि के प्रसंग में बाह्य दृश्य के दर्शन से नाम

रूप की उपेक्षा द्वाराशेष सत्, चित आनंद में चित्त का समाधान रूप बाह्य सविकल्प समाधि का उल्लेख तो वेदान्त शास्त्र में पाया जाता है। यथा वाक्यसुधा २७, २८ इत्यादि।

उपर्युक्त भ्रान्ति का कटु फल—

परन्तु यह विषय के नाम रूप की उपेक्षा है, विषय-भोग को समाधि नहीं कहा, विषय भोग में समाधि का वर्णन कहीं नहीं आया, इससे अशुद्ध अन्तःकरण वाले साधकों तथा साधारण जनता में भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि जब विषय-भोग में ही समाधि है, तो अन्य समाधि के लिये महान् प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता, अथवा विषय-भोग रूप समाधि के सुख का क्यों उपभोग न किया जाये। समाधि-सुख, अथवा आत्म-सुख तो ग्राह्य है, हेय नहीं अथवा साधक तथा ज्ञानी को भोग-विषयक प्रबल इच्छा उत्पन्न होने पर उसके भोग में कोई दोष नहीं। अथवा कोई वञ्चक स्वयं अपनी भूल जानते-

बूझते हुए भी विषय-भोग तथा यथेष्ट आचरण में रत पामर जीवन व्यतीत करने पर भी साधारण भोले जनों में उपर्युक्त भ्रान्त वचन के आधार पर अपने ज्ञानी होने की डौंडी पीट सकते हैं और मन-माने पदार्थों का उचित-अनुचित उपाय से संग्रह कर स्वच्छन्द भोगते हैं। अथवा साधारण गृहस्थी भी बिना अपने जीवन के सुधारे ऐसे दो-एक ग्रन्थों से वेदान्त की सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी होने की महती हानिप्रद अज्ञानजन्य मिथ्या-सन्तुष्टि मानने लग जाते हैं। इस महान् अनर्थकारी भ्रान्ति से बचाने के ही उद्देश्य से इस प्रकरण को यहाँ दिया गया है। श्री पण्डित पीताम्बर जी ने विचारसागर की टीका में इस महती अनिष्टकारी भ्रान्ति को कुछ सुलझाने का यत्न किया है, परन्तु भ्रान्ति तो भ्रान्ति ही है और फिर जिसमें वेदान्त-सिद्धान्त की इतनी स्पष्ट अवहेलना हो और वह भी ऐसी जिससे अनभिज्ञ

साधक तथा जनता महान् पतन के कूप में जागिरे और जो वेदान्त सम्प्रदाय की अनन्त निंदा का कारण बने उसको कहाँ तक सुलझाया जा सकता है। इसलिये अन्त में हार उन्हें भी माननी पड़ी है वह टिप्पण १५० में लिखते हैं—

(१) यह समाधि गौण है। किं वा कुत्ते की खलड़ी में पड़े दूध के समान त्याज्य है।

विचेचन—सो उपर्युक्त टिप्पण का प्रथम भाग पञ्चदशी ७, १४३–१५० के आधार पर है, वहां भी समाधि प्रकरण नहीं है प्रत्युत, निष्क्रिय एकरस अद्वय ब्रह्म के आत्मरूप से ज्ञान होने पर तूष्णींभाव रूप समाधि सहज है, परन्तु जब प्रारब्ध शेष इस अवस्था का भंग करती है, और पुनः समाधि आदि के यत्न द्वारा भी जब वह शांत नहीं हुई, तो ऐसी इच्छा तथा भोग को क्लेश मानता हुआ ज्ञानी भोग करता है न कि इसे समाधि मानते हुए, और इसीलिये ज्ञानी की दशा

में बहुत थोड़े भोग से सन्तुष्टि अज्ञानी कृत भोग के समान व्यसन आदि कार्य का अभाव वर्णन किया है तथा इसी हेतु से इसे अदृढ़ राग-काम अथवा राग आभास पञ्चदशी में कहा गया है। हां ऐसी अवस्था में (१) दोष-दृष्टि (२) प्रबल भावी तथा (३) जगत्-मिथ्यात्व का साधारण ज्ञान सम्भव है जो उपर्युक्त राग आभास के हेतु हैं, यद्यपि यह अपने प्रबल तीव्र प्रारब्ध के वेग को शमन नहीं कर सकते, अथवा दृढ बोध के आधार पर ज्ञानी भले बिना क्लेश (अनु ज्वर) के भी प्रबल प्रारब्ध, इच्छा आदि का भोग द्वारा क्षय करे। परन्तु विद्यारण्य मुनि ने इसे समाधि कहीं नहीं कहा, प्रत्युत जिज्ञासु तथा ज्ञानी के लिये द्वैत-विवेक प्रकरण में त्याज्य ही कहा है। जैसे पूर्व में वर्णन हो चुका है। और जिस समाधि का पीताम्बर जी ने वर्णन किया है वह भी विषय-भोग रूप नहीं, प्रत्युत सर्वत्र विषय के मिथ्या

नाम रूप की उपेक्षा द्वारा शेष सत्-चित्-आनंद रूप पर चित्त-समाधान रूप बाह्य समाधि की परिपक्व अवस्था का वर्णन है, जबकि अभ्यास के बल पर यह समाधि सहज सर्वत्र चलते-फिरते अन्य व्यवहार करते समय होने लगती है। यह विषय के नाम रूप की उपेक्षा द्वारा जो आनन्द का भान है, यह विषय-सुख से अत्यन्त विलक्षण है। इसमें विषय का नाम-रूप तो विस्मरण ही हो जाता है। शेष तो सविकल्प समाधि का ब्रह्मानन्द रहता है।

वास्तव में बात यह है कि कोई भी वेदान्त-रहस्य को केवल लौकिक तार्किक बुद्धि के द्वारा जान ही नहीं सकता।

ऐसी दशा में वेदान्त का सदुपयोग नहीं होता। जाने या बिना जाने मलिन भोग-वासनाओं की पुष्टि तथा पूर्ति के लिये इसका दुरुपयोग

होता है—जैसे कि इस प्रकरण के उपर्युक्त विचार से प्रतीत होता है।

(१) वेदान्त का सदुपयोग तो यह है कि यदि कभी प्रारब्ध अथवा प्राचीन संस्कारवश किसी अनात्म पदार्थ की इच्छा उत्पन्न हो भी जाये (जो साधारणतया साधनचतुष्टयसम्पन्न जिज्ञासु तथा ज्ञानी में असम्भव-प्राय है) तो विषय के मिथ्यापने के ज्ञान से (अथवा दोष की दृष्टि के आधार पर) उस इच्छा का दमन करके इसको कृतकार्य न होने देना चाहिए और आत्मस्वरूप सुख की अनुभूति में इसे विक्षेप नहीं डालने देना चाहिए, परन्तु ऐसा मलिन मन कैसे करने दे सकता है, इसलिये वेदान्त ज्ञान का दुरुपयोग होता है। इच्छा-उत्पत्ति तथा इच्छा-पूर्ति के समय तो आत्मतत्त्व की भूल तथा विमुखता स्वीकार कर ली जाती है और जब मलिन मन स्वच्छन्द विषय-भोग से सन्तुष्ट हो जाता है, तो उस समय

आत्म-ज्ञान जाग्रत हो जाता है और विषय-सुख को सोपाधिक ब्रह्मानन्द नाम देकर, विषय-भोग को परम पुनीत समाधि नामकरण करके विषय-भोग की पुष्टि कर देता है जिससे अनभिज्ञ जनों को खुले भोग की छुट्टी मिल जाती है।

उपसंहार—वेदान्त-विषय सुख अनुभूत शैली का सदुपयोग। सो प्रथम तो वेदान्त ज्ञान के आधार पर ऐसी भोग-इच्छा उत्पन्न ही नहीं होती। शरीर-निर्वाह मात्र उपयोगी ही इच्छा उत्पन्न होगी, क्योंकि अनन्त आनन्द तो उसको पहिले ही प्राप्त है। सुख कोई उससे भिन्न नहीं। यदि प्रारब्ध-वश इसकी उत्पत्ति मान भी ली जाय, तो तथ्य-ज्ञान का स्वाभाविक फल है कि इच्छा को दमन करे, यदि प्रबल वेग से न दमन हो सके, तो प्रारब्ध-हीनता के कारण क्लेश मानते हुए अल्प-भोग में ही सन्तुष्ट हो जाये जैसे कि पञ्चदशी-कार

ने कहा है, न कि प्रसन्नता पूर्वक भोग को समाधि का नाम देकर प्राचीन प्रारब्ध-जन्य भोग रूप पशु-प्रवृत्ति का ही समर्थन कर दे।

पंचदशी के अन्तिम प्रकरण में विषय-आनन्द का निरूपण ब्रह्मानन्द के अंशरूप से है, परन्तु ब्रह्मज्ञान के उपयोगी रूप से न कि विषय-सुख को समाधि कहीं कहा। १५, १;।

[ख] हेतु—ज्ञानी के क्रियमाण पुण्य-पाप नाश हो जाते हैं। इसलिये ज्ञानी के भी पाप सम्भव हैं।

समाधान :—(ब्र० सूत्र ४, १, १३-१५, १७, १६) तथा छां० ४,१४, ३ आदि में जो पाप-अश्लेष का वर्णन है। इसकी पूर्व प्रकरण से यह संगति है कि जैसे अपर ब्रह्म-विद्या के उपासक को मरण-पर्यन्त शास्त्रोक्त कर्म का विधान है ऐसा परब्रह्म ज्ञानी की दशा में नहीं है। यह सर्व-कर्म-त्याग कर

स्वरूपावस्थान रूप जीवन्मुक्ति के लिये है । भाष्यकार—न कि ज्ञानी के पाप का यहां कथन है। हो भी तो यह केवल ज्ञान की स्तुति के लिये है, गीता ६, ३१ मधुसूदन ।

[ग] हेतु--ज्ञानी पर शास्त्र का अंकुश नहीं, वह जो चाहे करे ।

समाधानः—यथेष्ट चेष्टा अत्यन्त मूढ पामर का विषय समझा गया है। इसलिये विद्वान् के लिये वह अत्यन्त अप्राप्त है, तथा विद्वान् के लिये अत्यन्त भार-रूप होने से शास्त्रोक्त कर्म की भी अप्राप्ति समझी जाती है, फिर अत्यन्त अविवेक के कारण होने वाले स्वेच्छाचार की बात ही क्या है' 'ऐतरेय, भाष्यभूमिका ।

[घ] हेतु—जनक आदि ज्ञानियों का राज्य-पालन आदि व्यवहार तथा राज्य-सुखभोग सुना जाता है ।

समाधान :—जनक आदि प्रारब्ध-वश गुण-अतीत समान प्रवृत्ति निवृत्ति तथा उसके कारण दुःख-सुख से उदासीन रहकर केवल परोपकार दृष्टि से न कि भोग आसक्त होकर साधु आचार की रक्षा में ही तत्पर रहे।

उपसंहार :—सो विचारसागर आदि ग्रन्थों में ज्ञानी के स्वच्छन्द आचरण तथा रागयुक्त भोग अथवा ज्ञानी की विषय-भोग में ही समाधि है। यह भाष्यकार, पञ्चदशी-कार, तथा अन्य अद्वैत आचार्यों के आशय के नितान्त विरुद्ध है। ज्ञानी के लिये जीवन्मुक्ति के आनन्द के लिये व्युत्थान सहज है। साधक की षट्-सम्पत्ति ज्ञानी में विना प्रयत्न के होती है। प्रारब्ध-वश तथा पर-हित की दृष्टि से उसका व्यवहार शुद्ध संस्कार के कारण परम पुनीत होता है। भोग-आसक्ति की गन्ध तक नहीं होती (गीता १४, २२)। क्लेश

मान कर इसमें प्रवृत्त होता है अथवा प्रौढ़ानुभूति होने से इससे सन्तप्त नहीं होता। बाधित अध्यास की अनुवृत्ति मात्र से ज्ञानी अज्ञानी का व्यवहार सम कहा है। उपर्युक्त दोष के कारण विचारसागर आदि ग्रन्थ तथा उसके अनुसार ज्ञानी के स्वच्छन्द व्यवहार तथा रागयुक्त भोग की दृष्टि का उपदेश साधकों तथा जनता के लिये बड़ा पतन का कारण हुआ है। सत्य के प्रेमी जन भाष्यकारादि सम्मत शुद्ध, विरक्त व्यवहार का पालन करते हुए वेदान्त का मनन करें। जिससे उनका लक्ष्य भी सिद्ध हो तथा वेदान्त-सिद्धान्त का निरादर न हो।

ऐतरेय उप० भूमिका भाष्यकार

यथाकामित्वं तु विदुषोऽत्यन्तमप्राप्तं अत्यन्तमूढविषयत्वेनावगमात्। तथा शास्त्र-चोदितमपि कर्म आत्मविदोऽप्राप्तं गुरुभार-तयावगम्यते। किमुतात्यन्ताविवेकनिमित्तं यथाकामित्वम्।

विद्वान् को यथेष्ट चेष्टा अत्यन्त अप्राप्त है, क्योंकि इस का विषय अत्यन्त विमूढ़ (पामर अज्ञानी) है। जब शास्त्रोक्त कर्म भी बहुत भारी होने से आत्मवित् को प्राप्त नहीं, तो अत्यंत अवि-वेकमूलक यथेष्ट चेष्टा की प्राप्ति कैसे ?

वी. वी. आर. आई. प्रेस, साधु आश्रम, होशिआरपुर।

लेखक की अन्य पुस्तकें

१. ब्रह्मविद्या—श्रुति, युक्तिअनुमोदित वेदांत और योग का अनूठा ग्रन्थ ६)
२. अध्यात्म-दर्शन—अध्यात्म विद्या की अपूर्व पुस्तक ४)
३. कर्म और योग—योग और कर्म का समन्वय २॥)
४. आत्म-पथ २)
५. धर्म की आवश्यकता—वर्तमान समय के धर्म-विषयक प्रश्नों का समाधान १)
६. आनंद-मार्ग—योगीराज सियाराम जी का जीवन-चरित्र तथा विचारधारा २)
७. सन्त वचनामृत =)
८. सैकुलर स्टेट अथवा राम-राज्य ≡)
९. Sway of Materialism over India १॥)
१०. Secular state or Ram Rajya २)

मिलने का पता—

मैनेजर साधु आश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)।